Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 GISRRJ | Volume 1 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

पं.दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से संबंध जीवन चिन्तन

डॉ. जगदीश प्रसाद जाटः
एसोसिएट प्रोफेसर
स्वः लक्ष्मी कुमारी बधाला गर्ल्स पी.जी. कॉलेज गोविन्दगढ़
चौमूँ (जयपुरम्)

कष्टमय बचपन और मेधावी छात्र जीवन

दीनदयाल उपाध्याय का बचपन एक सामान्य उत्तर भारतीय निम्न मध्यम वर्गीय सनातनी हिन्दू वातावरण में बीता। ब्रजभूमि के मथुरा जिले के नगला चन्द्रभान ग्राम में दीनदयाल उपाध्याय के प्रपितामह विख्यात ज्योतिषी पंडित हरिराम उपाध्याय रहा करते थे। श्री झण्डू राम उनके सहोदर अनुज थे। पंडित हरीराम उपाध्याय के तीन पुत्र थे-भूदेव, रामप्रसाद तथा राम प्यारे। झण्डू राम जी के भी दो लड़के थे-शंकरलाल और वंशी लाल।

श्री रामप्रसाद के पुत्र थे श्री भगवती प्रसाद । श्री भगवती प्रसाद का विवाह श्रीमती रामप्यारी से हुआ था। वे बहत धर्मपरायण महिला थी। आश्विन कृष्ण त्रयोदशी संवत् 1973, दिनांक 25 सितम्बर 1916 को श्री भगवती प्रसाद के घर में पुत्र जन्म हुआ। तब श्रीमती रामप्यारी अपने पिता श्री चुन्नीलाल शुक्ल के पास धनकिया में थी। उनके पिता धनकिया (राजस्थान) में स्टेशन मास्टर थे। बालक का पूरा नाम दीनदयाल व पुकारने का नाम 'दीना' रखा गया। दो वर्ष बीते श्रीमती रामप्यारी की गोद में दूसरा बच्चा आया, जिसका नाम शिवदयाल व पुकारने का नाम 'शिबू' रखा गया।

संयुक्त परिवार परम्परा

पंडित हरीराम के परिवार की संयुक्त परिवार परम्परा अभी तक अबाध चल रही थी। अतः परिवार बड़ा था। महिलाओं में कलह रहती थी। दीनदयाल अभी ढाई वर्ष के ही थे। इनके पिता भगवती प्रसाद उन दिनों जलेशर में सहायक स्टेशन मास्टर थे। उन्होंने गृह कलह को शांत करने के लिए अपनी चाची तथा विमाता को अपने पास जलेसर बुलवा लिया तथा दीना, शिबू व रामप्यारी को राजस्थान में धनकिया ग्राम में भेज दिया। चुन्नीलाल का गांव अर्थात रामप्यारी का मायका तथा दीनदयाल का ननिहाल फतेहपुर सीकरी के पास आगरा जिले में गुड़ की मंढ़ई नामक ग्राम में था।

ढ़ाई साल की अवस्था में पितृ गृह छूटने के बाद दीनदयाल वापस वहां रहने के लिए कभी नहीं लौटे । उनका पालन पोषण व विकास एक प्रकार से असामान्य स्थिति में हुआ। वे स्थितियां ऐसी भी थी, जिसमें व्यक्ति का व्यक्तित्व बुझ जाए, लेकिन दीनदयाल ने इसी परिवेश में ऊर्जा ग्रहण कर अपने व्यक्तित्व का विकास किया। निश्चय ही उनके जीवन पर बाल्यावस्था के भरपूर संस्कार थे।

मृत्यु दर्शन

मृत्यु का दर्शन जीवित जनों में वैराग्य उत्पन्न करता है। दीनदयाल उपाध्याय को बचपन में ही प्रियजनों की मृत्यु का धनीभूत अनुभव प्राप्त हुआ। ढ़ाई साल की अवस्था में दीनदयाल अपने नाना के पास आए ही थे कि कुछ ही दिनों में समाचार आया, उनके पिता भगवती प्रसाद का देहांत हो गया है। दीनदयाल पितृहीन हो गए और रामप्यारी विधवा हो गई। दीनदयाल की शिशु आखों ने टुकुर-टुकुर अपनी विधवा मां की गोद व आंसुओं को तथा दामाद विहीन नाना के बेबस और उदास चेहरे को देखा।

निश्चय ही बाल मन ने अबोध पर संवेदनशील अनुभव ग्रहण किया होगा। पितृहीन शिशु दीनदयाल, मां की गोद में बाल्यावस्था को प्राप्त हुए। पर विधवा शोकाकुल व चिंताकुल रामप्यारी पीड़ा और अपोषण का शिकार होकर, क्षय रोग ग्रस्त हो गई। उन दिनों क्षय रोग का अर्थ था निश्चित मृत्यु । अभी दीनदयाल सात वर्ष के तथा शिवदयाल पांच वर्ष के ही हुए थे कि दोनों बच्चों को नाना की गोद में छोड़कर रामप्यारी वास्तव में राम को प्यारी हो गई। दीनदयाल पिता और माता दोनों की स्नेह छाया से वंचित हो गये।

शायद नियति इस बालक को मृत्यु को सर्वांगतः दर्शन करवाने पर तुली हुई थी। मां के देहांत को अभी दो ही वर्ष हुए थे वृद्ध व स्नेही पालक, जो अपनी बेटी की अमानत को पाल रहे थे। नाना चुन्नीलाल भी स्वर्ग सिधार गये। यह 1926 का सितंबर माह था। दीनदयाल अपनी आयु के 10वें वर्ष में थे। पिता, माता व नाना के वात्सल्य से वंचित होकर वे अब अपने मामा के आश्रय पर पलने लगे। मामी नितांत स्नेहिल व मातृवत थी। दीनदयाल बहुत गंभीर रहते थे। दस वर्ष . का दीनदयाल अपने छोटे भाई शिवदयाल की भी चिंता करता था, उसे स्नेह भी देता था।

दीनदयाल सातवीं की पढ़ाई राजस्थान के कोटा नगर में कर रहे थे। यह सन् 1931 था। उन्हें कोटा से राजगढ़ जिला (अलवर) आना पड़ा, क्योंकि उनकी मामीजी का देहांत हो गया था। अपने पालकों की मृत्यु को निहारते दीनदयाल का यह 15वां वर्ष था। इसी छोटे आयु में दीनदयाल अपने सहोदर अनुज शिवदयाल के पालक भी थे। विधाता की प्रताड़ना ने इनका परस्पर स्नेहगत अधिक संवेदनशील और स्निग्ध कर दिया था। अभी तक दीनदयाल ने अपने पालकों की मृत्यु का ही अनुभव किया था। शायद मृत्यु अपने को सर्वांगतः दीनदयाल के सामने साक्षात् करने पर तुली थी। जब दीनदयाल नवीं कक्षा में पढ़ रहे थे। वे 18वें वर्ष में थे कि छोटा भाई शिवदयाल रोग ग्रस्त हो गया। उसे मोतीझरा हो गया था। दीनदयाल ने अपने छोटे भाई को बचाने की बहुत कोशिश की। सब प्रकार के उपचार करवाये, पर 18 नवम्बर 1934 को शिवदयाल अपने बड़े भाई दीनदयाल को अकेला छोड़ संसार से विदा हो गया।

अभी भी दीनदयाल पर एक झुर्रियों भरा स्नेहिल आशीर्वाद का हाथ था। वद्धा नानी दीनदयाल को बहुत प्यार करती थी। हालांकि अपनी पढाई और अन्य पारिवारिक कारणों से वह नानी के पास अधिक नहीं रह सके थे। तो भी नानी दुहिते में अनन्य स्नेह था। यह 1935 का वर्ष था। दीनदयाल ने 10वीं पास की थी। वह 19 साल के हो गये थे। इसी जाड़े के दिनों में नानी बीमार हुई और संसार से चल बसी।

पिता, माता, नाना, मामी, अनुज और अब नानी की मृत्यु ने दीनदयाल को अनुभव सिद्ध किया। उनकी चेतना मौत के प्रहारों से कुम्हलाई तो नहीं पर युवक दीनदयाल एक सतेज उदासी का धनी बनता जा रहा था। दीनदयाल की एक ममेरी बहन थी। बहन भाई के स्निग्ध रिश्ते की सभी तरलताएं इन दोनों के मध्य पूरे तौर पर सुविकसित हुई थी। दीनदयाल युवक हो गए थे। वह आगरा में एम. ए. अंग्रेजी की पढ़ाई कर रहे थे। बहन रमा देवी बहुत बीमार हो गई थी। दीनदयाल ने अपनी पढ़ाई छोड़कर रमा देवी की सेवा तथा उपचार के सब साधन जुटाए पर नियति को यह मंजूर था कि अपनी बहन की मौत का साक्षात्कार भी दीनदयाल को होना चाहिए। बचाने की सब कोशिशों के बावजूद रमा देवी के प्राण पखेरू उड़ गए। यह सन् 1940 था। दीनदयाल 24 वर्ष के हो गए थे। मृत्यु ने उनके शिशु किशोर बाल व युवा मन पर निरंतर आघात किए। न मालूम उनके चिर प्रशंसित वैरागी जीवन में नियति के इस तथाकथित क्रूर निदर्शन का कितना हाथ था?

अक्षरशः अनिकेत

दीनदयाल जी अक्षरशः अनिकेत थे। शिशु अवस्था के ढाई वर्ष वे अपने पिता के घर रहे, उसके बाद उनकी प्रवासी जीवन प्रारंभ हो गया। वह कभी लौटकर रहने के लिए अपने घर नहीं आए। पारिवारिक कारणों से उन्हें अपने नाना चुन्नी लाल के साथ रहने के लिए धनकिया जाना पड़ा। चुन्नी लाल अपने दो पुत्रों, नत्थी लाल और हरिनारायण तथा बाद में दामाद भगवती प्रसाद (दीनदयाल जी के पिता) की मृत्यु से बहुत आहत हुए। उन्होंने नौकरी छोड़ दी और अपने घर गुड़ की मंढ़ाई आ गए। दीनदयाल भी धनकिया ग्राम से गुड़ की मंढाई आ गए। दीनदयाल 9 वर्ष के हो गए पर अभी उनके अध्ययन की कोई व्यवस्था नहीं हुई थी।

अब वह अपने मामा राधारमण, के पास आ गए जो गंगापुर में सहायक स्टेशन मास्टर थे। यहां वे चार वर्ष रहे। गंगापुर में इससे आगे पढ़ाई की व्यवस्था नहीं थी, अतः 12 जून 1929 को कोटा के एक स्कूल में उनका प्रवेश हुआ। वह वहां 'सेल्फ सपोर्टिंग हाउस' में रहते थे। तीन साल वहीं रहे, तत्पश्चात् उन्हें राजगढ़ (अलवर जिला) आना पड़ा। मामा राधारमण के चचेरे भाई नारायण शुक्ल यहां स्टेशन मास्टर थे, दीनदयाल उनके पास दो साल रहे। 1934 में नारायण शुक्ल का स्थानांतरण सीकर हो गया। एक साल सीकर में रहकर 10वीं कक्षा उत्तीर्ण की। वहां से उच्च शिक्षा के लिए पिलानी गए और दो वर्ष रहकर इण्टरमीडिएट किया। यह सन् 1936 था। इसी वर्ष बी.ए. की पढ़ाई के लिए कानपुर गए। यहां भी दो वर्ष रहकर, एम.ए. की पढ़ाई के लिए आगरा गए। यह राजामंडी में किराये के मकान में रहे। दो वर्ष यहां भी रहकर 1941 में 25 वर्ष की अवस्था में बी.टी. करने के लिए प्रयाग चले गए। इसके साथ ही उनका प्रवेश सार्वजनिक जीवन में हो गया। वे अखण्ड प्रवासी हो गए।

25 वर्ष की अवस्था तक दीनदयाल उपाध्याय राजस्थान और उ.प्र. के कम से कम 11 स्थानों पर कुछ कुछ समय रहे। अपना घर, सुविधा व स्थायित्व का जीवन शायद लोगों में मोह उत्पन्न करता है। दीनदयाल का बचपन कुछ यूं बीता कि ऐसे किसी मोहजाल की कोई संभावना न थी। सार्वजनिक जीवन में आकर आजीवन बेघर व घुमंतू रहने में प्रारंभिक काल का यह अनिकेती जीवन निश्चय ही उनकी मानस रचना में सहायक हुआ होगा। नए-नए स्थान, नए-नए अपरिचित लोगों से मिलना, उनमें पारिवारिकता उत्पन्न करना उन्होंने बचपन की इस अनिकेत अवस्था में ही सीखा होगा, शायद।

मेधावी छात्र जीवन

स्थितियां जिस प्रकार की रही, तदनुसार 9 वर्ष की अवस्था तक उनकी पढ़ाई की कोई व्यवस्था नहीं हो सकी थी। 1925 में गंगापुर में अपने मामा राधारमण के यहां आने पर उनकी शिक्षा प्रारंभ हुई। घर में कोई अन्य विद्यार्थी न था, पढ़ाई का वातावरण नहीं था। गृह-दशा पारिवारिक आपदाओं के कारण बहुत क्लांत व तनाव भरी थी। कुछ भी सुविधायें नहीं थी। दीनदयाल दूसरी कक्षा के छात्र थे। उनके मामा राधारमण बहुत बीमार पड़ गए। दीनदयाल मामा की सेवा के लिए, उनके उपचारार्थ, उनके साथ आगरा गए। परीक्षा के कुछ ही दिन पूर्व राधारमण वापस गंगापुर आए। दीनदयाल ने परीक्षा दी, वे कक्षा में प्रथम आए। मामा की सेवा करते हुए उन्होंने तीसरी व चौथी की परीक्षायें उत्तीर्ण की। उसी काल में उनके मेधावी विद्यार्थी होने का परिवार व विद्यालय के लोगों को एहसास हुआ।

कक्षा 5 व 7 तक की पढ़ाई कोटा में कर, उन्होंने 8वीं कक्षा के लिए राजगढ़ में प्रवेश लिया। अंकगणित में उनकी अद्भुत क्षमता का यहां परिचय मिला। जब वह 9वीं में हुए तो कहते हैं कि 10वीं के विद्यार्थी भी उनसे गणित के सवाल हल करवाया करते थे। अगले ही वर्ष उन्हें अपने मामाजी के स्थानांतरण के कारण सीकर जाना पड़ा। उन्होंने 10वीं की परीक्षा सीकर, कल्याण हाई स्कूल से दी। वे न केवल प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुए वरन् समस्त बोर्ड की परीक्षा में सर्वप्रथम रहे। तत्कालीन सीकर के महाराजा कल्याण सिंह ने उन्हें तदनिमित्त स्वर्ण पदक प्रदान किया, 10रु, महावार छात्रवृत्ति व पुस्तक आदि के लिए ढाई सौ रुपये की राशि पारितोषिक रूप में दी।

उन दिनों पिलानी उच्च शिक्षा का प्रसिद्ध केंद्र था। दीनदयाल इण्टरमीडिएट की पढ़ाई के लिए 1935 में पिलानी चले गए। 1937 में इण्टरमीडिएट बोर्ड के परीक्षा में बैठे और न केवल समस्त बोर्ड में सर्वप्रथम रहे वरन् सब विषयों में विशेष योग्यता के अंक प्राप्त किए। बिड़ला कॉलेज का यह प्रथम छात्र था, जिसने इतने सम्मानजनक अंकों से परीक्षा पास की थी। सीकर महाराजा के समान ही घनश्याम दास बिड़ला ने एक स्वर्ण पदक, 10 रु. मासिक छात्रवृत्ति तथा पुस्तकों आदि के खर्च के लिए 250 रु. प्रदान किए।

सन् 1939 में सनातन धर्म कॉलेज, कानपुर से प्रथम श्रेणी में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। एम.ए. अंग्रेजी साहित्य में करने के लिए सेंट जॉन्स कॉलेज आगरा में प्रवेश लिया। एम.ए. प्रथम वर्ष में उन्हें प्रथम श्रेणी के अंक मिले बहन की बीमारी के कारण एम.ए. उत्तरार्द्ध की परीक्षा नहीं दे सके। मामाजी के बहुत आग्रह पर वह प्रशासनिक परीक्षा में बैठे, उत्तीर्ण हुए, साक्षात्कार में भी चुन लिये गए, पर उन्हें प्रशासनिक नौकरी में रूचि नहीं थी, अतः बी.टी. करने के लिए प्रयाग चले गए।

उनकी यह अध्ययन उर्जस्विता सार्वजनिक जीवन में जाने के बाद प्रखरतम होती चली गयी। प्रभूत सामाजिक एवं दार्शनिक साहित्य की सृजन क्षमता के बीज, हमें उनके विद्यार्थी काल में ही दिखाई देते हैं।

विद्यार्थी काल में आगरा में नानाजी देशमुख और दीनदयाल उपाध्याय साथ-साथ रहते थे। उनके सहज ईमानदारी को अभिव्यक्त करने वाली एक घटना नानाजी इस प्रकार सुनाते हैं :

"एक दिन प्रातः हम दोनों मिलकर- सब्जी खरीदने बाजार गए दो पैसे की सब्जी खरीदी लौटकर घर पहुंचने को ही थे कि दीनदयाल जी एकाएक रूक गए, वे बोले" नाना बड़ी गड़बड़ हो गयी।" मेरे पूछने पर उन्होंने कहा, "मेरी जेब में चार पैसे थे। उनमें से एक पैसा खोटा था। वह पैसा ही उस सब्जी वाली को दे आया हूं। मेरी जेब में बचे दोनों पैसे अच्छे हैं वह क्या कह रही होगी उसे ठीक पैसे दे आये।"

उनके चेहरे पर अपराधी जैसा भाव उभर आया था। हम लोग वापिस सब्जी वाली के पास पहुंचे। उसे वास्तविकता बताई तो वह कहने लगी, "कौंन ढुंढेगा तुम्हारा खोटा पैसा? जाओ, ठीक है जो दे दिया।" किन्तु दीनदयाल जी नहीं माने उन्होंने उस बुढ़िया के पैसों के ढेर में से अपना चिकना काला और खोटा पैसा ढूंढ़ निकाला। उसने बदले में अपनी जेब से दूसरा अच्छा पैसा उस बुढ़िया को दे दिया, तब कहीं उनके चेहरे पर संतोष का भाव उभरा। बुढ़िया की भी आंख डबडबा आई। वह कहने लगी "बेटा! कितने अच्छे हो तुम भगवान तुम्हारा भला करे।"

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से संबंध

जिस काल में दीनदयाल उपाध्याय का सम्पर्क राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से हुआ, वह भारत की आजादी का महत्त्वपूर्ण काल है। 1937 के चुनावों में उ.प्र. की कांग्रेस सत्ता में आई, मुस्लिम लीग और कांग्रेस का समझौता भंग हुआ। मुस्लिम लीग के नेता चौधरी खालिक अजुमा ने नाराज होकर कहा यदि हम साथ राज नहीं कर सकते तो हम साथ रह भी नहीं सकते। द्वि-राष्ट्रवाद का नारा तेजी से बुलंद हुआ। सम्प्रदाय के आधार पर पृथक राष्ट्रीयता के नारे ने मुसलमानों को आक्रामक बना दिया था। तथा 1940 में लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान निर्माण का प्रस्ताव भी मुस्लिम लीग ने पारित कर दिया। यह आक्रामक पृथकतावाद भारत के हर राष्ट्रवादी मन को आहत करता था। दीनदयाल उपाध्याय का युवा मन भी आजादी के आंदोलन के इस पृथकतावादी विचलन से आहत था। भारत में द्वि-राष्ट्रवाद की स्थापना का स्वप्न लेकर जो साम्प्रदायिकता के आधार पर हिंसाचारी हो गए थे, उनको राष्ट्रीय एकात्मता के धारकों द्वारा समुचित जवाब दिया जाना चाहिए था। साम्राज्यवादी अंग्रेज इस द्वि-राष्ट्रवादी साम्प्रदायिक मानसिकता का तुष्टीकरण कर रहा था। दीनदयाल उपाध्याय इस साम्प्रदायिक पृथकतावाद एवं द्विराष्ट्रवाद का प्रखरता पूर्वक मुकाबला करना चाहते थे। इन्हीं दिनों जब वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क में आए, संघ का कार्य उन्हें अपने मन के अनुकूल लगा। कानुपर में उनके सहपाठी बालूजी महाशब्दे उन्हें संघ के संपर्क में लाये । वहीं उनकी भेंट राष्ट्रीय स्वयंसवेक संघ के संस्थापक डॉ. केशव राव बलिराम हेडगेवार से हुई। श्री बाबा साहब आपटे एवं दादा राव परमार्थ, इनके छात्रावास में ही ठहरते थे। स्वातंत्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर जब कानपुर आए तब दीनदयाल उपाध्याय ने उन्हें संघ शाखा में आमंत्रित कर 'बौद्धिक वर्ग' करवाया। कानपुर में ही श्री सुंदर सिंह भंडारी उनके सहपाठी थे।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अनुशासित युवकों का एक क्रमबद्ध संगठन था। वहां बिना प्रशिक्षण प्राप्त किये कोई कार्यकर्ता नहीं बन सकता था। यह प्रशिक्षण तीन वर्ष का होता है। उन दिनों ग्रीष्मावकाश में 40 दिनों का यह प्रशिक्षण शिविर नागपुर में होता था। जिसको 'संघ शिक्षा वर्ग' कहा जाता है। दीनदयाल उपाध्याय ने 1939 में प्रथम वर्ष का तथा 1942 में द्वितीय वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इन प्रशिक्षणों से उनकी यह धारणा पुष्ट हुई कि केवल अंग्रेजों को गाली देना मात्र ही देशभक्ति नहीं है। स्वतंत्रता कोई नारेबाजी का मुद्दा भी नहीं है, वरन संगठित एवं संस्कारित समाज ही सच्चे स्वतंत्र्य का अधिकार होता है।

संघ के शारीरिक कार्यक्रमों को दीनदयाल उपाध्याय बहुत ठीक प्रकार नहीं कर पाते थे, लेकिन बौद्धिक परीक्षा में वे प्रथम आए। इस सन्दर्भ में श्री बाबा साहब आपटे लिखते हैं "पंडित दीनदयालजी ने उत्तरपुस्तिका में कई हिस्से पद्यबद्ध लिखे थे, किन्तु वह

केवल तुकबंदी नहीं थी अथवा केवल कल्पना का विचार भी नहीं था। गद्य के स्थान पर पद्य का माध्यम अपनाया गया था। विवेचन नपे-तुले शब्दों में था और तर्कशुद्ध था मैं प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका।"

अपनी पढ़ाई पूर्ण करने तथा संघ का द्वितीय वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बन गये। वह आजीवन संघ के प्रचारक ही रहे। 1942 से 1951 तक उन्होंने उ.प्र. राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ में जीवनव्रती प्रचारक के नाते दायित्व वहन किया।

दीनदयाल उपाध्याय ने इस निर्णय से उनके परिजन बहुत परेशान हुए। उनके मामाजी उनसे इसलिए नाराज थे कि प्रशासनिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बावजूद प्रशासन का नौकरी करना स्वीकार नहीं किया। अध्यापकीय क्षेत्र में अपनी रूचि के कारण उन्होंने कानपुर से बी.टी. किया था। परिजनों की अपेक्षा थी कि प्रशासक न सही दीनदयाल अध्यापक की नौकरी तो अब स्वीकार कर ही लेंगे लेकिन तब उन्हें बहुत दुख हुआ, जब दीनदयाल घर-द्वार छोड़कर संन्यासीवत् संघ के जीवनव्रती प्रचारक बन गये। उ.प्र. के लखीमपुर जिले में, जिला प्रचारक के नाते उनकी नियुक्ति हुई। बी.टी. करके दीनदयाल अपने मामाजी के घर नहीं गए। 1940 में मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान निर्माण का प्रस्ताव पारित करने के बाद, साम्प्रदायिक पृथकतावाद, उन्माद एवं हिंसाचार बढ़ गया था। दीनदयाल का मन इस अवस्था के प्रतिकार के लिए मचल रहा था। वे परिवार को भूलकर संघ के काम में तल्लीन हो गए।

उन्होंने एक पत्र में अपने मामा को लिखा "हमारे पतन का कारण हममें संगठन की कमी है। बाकी बुराइयाँ, अशिक्षा आदि तो पतीत अवस्था के लक्षण मात्र हैं।... रही व्यक्तिगत नाम और यश की बात, सो तो आप जानते ही हैं कि गुलामों का कैसा नाम और कैसा यश?"

अपने कार्य की प्रेरणा इस युवा काल में उन्होंने इतिहास की जिस धारा से ग्रहण की थी, उसकी ओर भी वह इस पत्र में संकेत करते हैं:

"जिस समाज और धर्म की रक्षा के लिए राम ने वनवास सहा, कृष्ण ने अनेकों कष्ट उठाये, राणा प्रताप जंगल-जंगल मारे गए, शिवाजी ने सर्वस्व अर्पण कर दिया, गुरू गोविन्द के छोटे-छोटे बच्चे जीते जी किले की दीवारों में चने गए क्या उसके खातिर हम अपने जीवन के आकांक्षाओं का, झूठी आकांक्षाओं का त्याग भी नहीं कर सकते?".

1942 से 1945 तक वे लखीमपुर में ही प्रचारक रहे। पहले उन्होंने जिले का तथा बाद में विभाग का काम संभाला। उनकी कार्यसिद्धता, संस्कारक्षमता एवं बौद्धिक प्रखरता को देखते हुए 1945 में ही उन्हें संपूर्ण उ.प्र. का सह–प्रान्त प्रचारक बना दिया गया। उन दिनों उ.प्र. के प्रान्त प्रचारक श्री भाऊराव देवरस थे। दीनदयाल जी की संगठनात्मक प्रतिभा एवं संघ कार्य में उनके योगदान के विषय में भाऊराव लिखते हैं:

"संघ के उन प्रांरभिक दिनों में, जब कार्य कंटकाकीर्ण था, उस समय तुम (श्री उपाध्याय) कार्य के लिए चल निकले। तब संघ कार्य के विचारों को उ.प्र. में

कोई जानता नहीं था। तुमने स्वंयसेवक के नाते इस कार्य का जुआ अपने कंधे पर उठा लिया। उ.प्र. के संघ कार्य की नींव में तुम्ही हो । आज का यह संघ का रूप तुम्हारे ही परिश्रम का, तुम्हारे ही कर्तव्य का फल है। अनेक संघ कार्यकर्ता तुम्हारे जीवन के प्रेरणा लेकर चल रहे हैं। अपने जीते जी तुम इसी मार्ग पर चलने को प्रोत्साहित करते रहे।..... हे आदर्श स्वयंसेवक! संघ के संस्थापक के मुख से आदर्श स्वयंसेवक के गुणों पर भाषण सुना था, तुम उसके मूर्तिमंत प्रतीक थे। प्रखर बुद्धिमत्ता, असामान्य कर्तृत्व, निरहंकार व नम्रता के आदर्श ।"

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इन प्रारंभिक दिनों में उ.प्र. के विश्वविद्यालयीन केन्द्रों पर अधिक पुष्पित व पल्लवित हुआ। दीनदयाल उपाध्याय बहुत मात्रा में इसके लिए कारणीभूत थे। जब महात्मा गांधी के हत्या के बाद संघ पर प्रतिबंध लगा, दीनदयाल उपाध्याय प्रचार एवं सत्याग्रह संचालन के सूत्रधार बने। ... 'पांचजन्य' को सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया। दीनदयाल ने भूमिगत

रहते हुए 'हिमालय' निकाला; वह भी जब्त कर लिया गया, उन्होंने 'राष्ट्रभक्त' निकाला। इसी दौरान राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संविधान लिखा गया। दीनदयाल उपाध्याय की इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

लेखक एवं पत्रकार

राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय स्वातंत्र्य के संदर्भ में प्रचलित धारणाओं से भिन्न विचार था, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का। संघ के किशोर विद्यार्थी बड़ी संख्या में आया करते थे। अप्रैल 1946 की बात है, एक प्रांतीय बैठक में प्रांत प्रचारक भाऊराव ने यह चिंता व्यक्त की कि हमारा विचार बाल सुलभ भाषा में उपलब्ध नहीं है, वास्तव में बाल साहित्य की बहुत आवश्यकता है। दीनदयाल जी ने चुपचाप यह बात सुनीं। रातभर वह लिखते रहे, प्रातःकाल पांडुलिपि भाऊराव को सौंपते हुए बोले "देखिये, यह पुस्तक बाल स्वयंसेवकों के लिए कैसी रहेगी" सभी देखकर चमत्कृत हुए, रात भर में दीनदयाल जी ने एक बाल उपन्यास लिख डाला। उनकी प्रथम पुस्तक 'सम्राट चंद्रगुप्त' नाम से प्रकाशित हुई।

स्वतंत्रता के तत्कालीन प्रयत्नों से संघ की सहमति नहीं थी व उसमें नीतिमत्ता व वीरवृत्ति का अभाव देखते थे। 'सम्राट चंद्रगुप्त' में ऐतिहासिक पात्रों चंद्रगुप्त व चाणक्य के माध्यम से दीनदयाल उपाध्याय ने पराक्रम और रणनीतिकुशल स्वातंत्र्य प्रयत्नों की और किशोर हृदयों को प्रवृत्त करने का प्रयत्न किया। वे अपने प्रयत्न में सफल रहे। अपने 'मनोगत' विचार का प्रतिपादन वे बखूबी इसी पुस्तिका में कर सके हैं। कथा प्रवाह इतना प्रखर है कि एक बार पुस्तक आरंभ करने पर उसे पूरा पढ़ने का आकर्षण उत्पन्न होता है। वैचारिक तथा दार्शनिक पक्ष से पुस्तक को बोझिल नहीं होने दिया गया है। भावों की तेजस्विता, भाषा का लालित्य और कथा का प्रवाह इस कृति की विशेषता है।

'सम्राट चन्द्रगुप्त' बाल उपन्यास लोकप्रिय हुआ, इससे यह मांग उठी की तरूणों के लिए भी ऐसी ही कोई पुस्तक लिखी जानी चाहिए। इस अपेक्षा की पूर्ति में दीनदयाल जी ने 'जगद्गुरू शंकराचार्य' नाम से अपना दूसरा उपन्यास लिखा।

दीनदयाल उपाध्याय की यह द्वितीय औपन्यासिक कृति जिसमें पात्र एवं घटनायें पुरानी हैं पर भाव एवं विचार और परिवेश नया है। दीनदयाल जिस शाखा पद्धति से संघ कार्य करते थे उसमें समय देने के लिए जवानों को प्रेरित करना, उनमें देश के सांस्कृतिक गौरव का अभिमान उत्पन्न करना तथा अपना जीवन समर्पित करने की आकांक्षायें पैदा करना इसी कृति का उद्देश्य था।

'सम्राट चंद्रगुप्त' तथा 'जगद्गुरु शंकराचार्य' जिनका प्रणयन क्रमशः 1946 और 1947 में हुआ, दीनदयाल उपाध्याय के सम्पूर्ण साहित्य में ये दो ही साहित्यिक कृतियां है। उनका साहित्यिक रूप इन प्रथम कृतियों में ही इतना प्रगल्भतापूर्ण है कि यदि दीनदयाल उपाध्याय अपने आगामी जीवन में साहित्यिक क्षेत्र को ही चुनते तो वे संभवतः भारत के बड़े साहित्यकारों में गिने जाते । लेकिन 1947 के बाद उन्होंने किसी अन्य साहित्यिक कृति का सृजन नहीं किया। आगे का उनका साहित्यिक विचार प्रधान है। वह आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं दार्शनिक के रूप में प्रकाशित हुआ है। इस साहित्य में वह लालित्य व भावप्रवणता नहीं है जो इन प्रथम दो रचनाओं में है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक रहते हुए ही उन्होंने अनेक पत्र-पत्रिकाओं का संचालन किया। दीनदयाल उपाध्याय के प्रयत्न और प्रेरणा से 1945 में मासिक 'राष्ट्रधर्म' व साप्ताहिक 'पांचजन्य' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। बाद में 'स्वदेश' दैनिक भी चला। इन पत्रिकाओं में प्रत्यक्ष सम्पादक दीनदयाल उपाध्याय कभी नहीं रहे, लेकिन वास्तविक संचालक, सम्पादक व आवश्यकता होने पर उसके 'कम्पोजिटर', 'मशीनमैन' व सबकुछ दीनदयाल उपाध्याय ही थे।

अखण्ड भारत क्यों?

यही वह दौर था जब दीनदयाल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से राष्ट्रवाद का जन-जन में जागरण कर रहे थे। लेकिन कुटिल साम्राज्यवादी अंग्रेज कुछ और ही योजना बना रहा था। उसने आजादी के आंदोलन को सत्ता लिप्सा के अभियान में बदल दिया। अंग्रेजों ने भारत से जाने की शर्त के रूप में सम्प्रदाय के आधार पर वर्णित द्वि-राष्ट्रवाद के आधार पर भारत विभाजन की शर्त रख दी। भारत का नेतृत्व उसका प्रतिवाद नहीं कर सका तथा अंग्रेज भारत विभाजन करके यहां से चला गया। भारत विभाजन के

दौर में भयानक रक्तपात हुआ। देश, भारत को एक राष्ट्र मानने वाले तथा भारत में द्विराष्ट्र मानने वाले में, बंट गया। इसी हिंसाचार ने महात्मा गांधी को भी लील लिया। उनकी जघन्य हत्या हुई।

भारत विभाजन ने दीनदयाल जी को बहुत आहत किया। उन्होंने प्रखरतापूर्वक अपना पक्ष रखा। दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, "अखण्ड भारत देश की भौगोलिक एकता का ही परिचायक नहीं अपितु जीवन के भारतीय दृष्टिकोण का द्योतक है जो अनेकता में एकता का दर्शन करता है। अतः हमारे लिए अखण्ड भारत कोई राजनैतिक नारा नहीं है।.....बल्कि यह तो हमारे संपूर्ण जीवनदर्शन का मूलाधार है।"

अखण्ड भारत की अवधारणा से संबंधित ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का विश्लेषणार्थ उपाध्याय ने 'अखण्ड भारत क्यों?' नाम की पुस्तिका लिखी, जिसमें उन्होंने प्राचीन भारत साहित्य के संदर्भित करते हुए भारत में युगों से चली आयी उस सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परम्परा का उल्लेख किया है जो भौगोलिक भारत को एक एकात्म राष्ट्र के रूप में विकसित करने में समर्थ हुई थी। इस पुस्तिका में सामग्री जहां तथ्यान्वेषी है, वहीं भाषा बहुत भाव प्रवण है..दिल्ली में हमारे नेता कुमकुम तिलक लगा रहे थे जबकि पंजाब में हमारी 'माताओं और बहनों का सिंदूर पुछ रहा था। 'वन्देमातरम्' का जयघोष करके हम (7 माता के वे हाथ काट चुके थे जिनसे वह हमें आशीर्वाद देती।..... दिल्ली के लाल किले पर तिरंगा फहराकर स्वतंत्रता की घोषणा की गई किंतु रावी के जिस तट पर स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा दोहरायी गई थी वह हमसे छिन चुका था।"

भारत विभाजन के लिए उपाध्याय अपनी पुस्तिका में मुस्लिम पृथकत्व की नीति, अंग्रेजों की 'फूट डालो व राज करो' की नीति, कांग्रेस की राष्ट्रीयता की विकृत धारणा व तुष्टिकरण की नीति को जिम्मेदार मानते हैं। 20 दिसम्बर 1887 को दिए गए सर सैयद अहमद के उस भाषण का, जिसमें उन्होंने मुसलमानों को कांग्रेस से तथा हिंदुओं से अलग रहने की सलाह दी थी, उपाध्याय ने सुविस्तृत वर्णन किया है। यह भाषण मुस्लिम पृथकतावाद का प्रथम प्रकटीकरण था, जो अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी, मुस्लिम लीग और अंततः पाकिस्तान के मांग के रूप में विकसित हुआ।

कांग्रेस की हिंदू-मुस्लिम नीति को तथा मिश्रित संस्कृति के सिद्धांत को परोक्षतः द्वि-राष्ट्रीयतावादी बताते हुए उपाध्याय निरूपित करते हैं कि मुस्लिमों के अलग संस्कृति तथा इस संस्कृति के पोषण के विचार ने तुष्टिकरण को जन्म दिया, राष्ट्रीयता की अवधारणा को विकृत किया : "खिलाफत आंदोलन को राष्ट्रीय आंदोलन करार देकर हमने अपनी राष्ट्रीयता को ही कलंकित नहीं किया बल्कि मुसलमानों के मन में यह धारणा उत्पन्न कर दी कि उन्हें राष्ट्रीय बनने के लिए इस्लाम के नाम पर प्रचलित भारत बाह्य प्रवृतियों को छोड़ने की जरूरत नहीं है, बल्कि उन पर आग्रह किया तो वह भी भारत को राष्ट्रीयता के अंग बना सकती है। फलतः 1923 में काकीनाडा कांग्रेस के अध्यक्ष मो. मोहम्मद अली ने 'वन्देमातरम्' का विरोध किया।"

कांग्रेस के इस प्रवृति ने आम मुस्लिम समाज को पृथकतावादी मुस्लिम नेतृत्व के पीछे खड़ा कर दिया। 1935-36 के चुनावों में यद्यपि मुस्लिम लीग को अधिक सफलता नहीं मिली थी, किन्तु कांग्रेस सरकार को मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति का लाभ उठाकर मुसलमानों ने अपना संगठन खूब बढ़ाया। जिन्ना ने कांग्रेस से समझौता करने के लिए पहले 14-सूत्रीय तथा 21-सूत्रीय कार्यक्रम रखा; किन्तु समझौता नहीं हुआ। कारण, वह समझौता चाहते ही नहीं थे। कांग्रेस मंत्रीमंडल के पदत्याग पर लीग ने 'मुक्ति दिवस' मनाया तथा लाहौर में 1940 में 'पाकिस्तान' को अपना ध्येय घोषित किया।

दीनदयाल उपाध्याय यह नहीं मानते कि विभाजन स्वीकार न करने पर भारत आजाद नहीं होता तथा भयानक खून-खराबा होता। उनकी मान्यता है कि "कांग्रेस के नेता यदि डटे रहते तथा भारत की जनजागृति की मदद करते तो अंग्रेज अखण्ड भारत को छोड़कर जाते और सत्ता कांग्रेस के ही हाथ में सौंप कर जाते।" रक्तपात के विषय में उनका मत है : "भारत विभाजन के पूर्व और पश्चात् के नरमेध में जितनी बलि चढ़ी है उतनी दोनों पिछले महायुद्धों में भी नहीं चढ़ी, फिर लूट, अपहरण और हत्याकांड में मानव का जो जघन्यतम पशुभाव प्रकट हुआ, वह तो युद्ध में कहीं नहीं हुआ।"

विभाजन से हमारी किसी भी समस्या का समाधान नहीं हुआ; बल्कि समस्या और जटिल हुई। भारत की अंतर्राष्ट्रीय शक्ति को न्यून करने में भी पाकिस्तान से हमारा झगड़ा बहुत बड़ी भूमिका अदा कर रहा है। हिंदू मुस्लिम समस्या ज्यों-की-त्यों है। भारत के

राजनैतिक दल उसी मिश्रित संस्कृति और राष्ट्रीयता की अवधारणा को अब भी अपना आधार बनाये हुए है। परिणामतः मुस्लिम पृथकतावाद आजाद भारत में भी बल ग्रहण कर रहा है तथा उनकी यह अवधारणा पाकिस्तान के अस्तित्व को तार्किक आधार प्रदान करती है। समाधान की दृष्टि से अपनी पुस्तिका के अंत में उपाध्याय कहते हैं: "वास्तव में भारत को अखण्ड करने का मार्ग युद्ध नहीं है। युद्ध से भौगोलिक एकता हो सकती है, राष्ट्रीय एकता नहीं। अखण्डता भौगोलिक ही नहीं, राष्ट्रीय आदर्श भी है। देश का विभाजन दो राष्ट्रों के सिद्धांत तथा उसके साथ समझौते की प्रवृति के कारण हुआ। अखण्ड भारत एक राष्ट्र का सिद्धांत पर मन वचन एवं कर्म से डटे रहने पर सिद्ध होगा। जो मुसलमान आज राष्ट्रीय दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। वह भी आपके सहयोगी बन सकेंगे, यदि हम राष्ट्रीयता के साथ समझौते की वृति त्याग दें। आज की परिस्थिति में जो असंभव लगता है वह कालांतर में संभव हो सकता है, किन्तुं आवश्यकता है कि आदर्श हमारे सम्मुख सदा ही जीवित रहें।

राष्ट्रीयता के साथ समझौता न करने की अपनी मानसिकता को वह एक अन्य लेख में इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं "यदि हम एकता चाहते हैं तो भारतीय राष्ट्रीयता, जो कि हिन्दू राष्ट्रीयता है तथा भारतीय संस्कृति, जो कि हिन्दू संस्कृति है, उसका दर्शन करें, उसे मानदण्ड मानकर चलें। भागीरथी की इस पुण्यधारा में सभी प्रवाहों का संगम होने दें। यमुना भी मिलेगी और अपनी सारी कालिमा खोकर गंगा की धवल धारा में एकरूप हो जायेगी।"

उनकी यह अखण्ड भारत क्यों पुस्तक उस संक्रमण काल में लिखी गई, जब वह प्रत्यक्ष संघ कार्य से राजनैतिक क्षेत्र की दिशा में प्रयाण कर रहे थे उनका लेखन कार्य सतत् चलता रहा। यथा प्रसंग उसका वर्णन आगे के अध्यायों में होगा।

सन्दर्भगन्थाः –

1. महेश चन्द्र शर्मा, दीनदयाल उपाध्याय सम्पूर्ण वाडगम्य, खंड पांच, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली , 2016, पृष्ठ 173–280
2. हृदय नारायण दीक्षित, तत्वदर्शी दीनदयाल उपाध्याय, दीनदयाल उपाध्याय सेवा प्रतिष्ठान, लखनऊ, 1996, पृष्ठ 72-85
3. दिलीप अग्निहोत्री, दीनदयाल उपाध्याय के विचार और दर्शन आज भी प्रासंगिक, प्रभा साक्षी, डेलीहंड, 25 सितम्बर, 2018, पृष्ठ 1-2
4. पंडित दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति दर्शन पृष्ठ संख्या 58
5. पंडित दीनदयाल उपाध्याय राजनैतिक चिन्तन पृष्ठ संख्या 38
6. विजयवाड़ा अधिवेशन में दिया भाषण 1965
7. जनसंघ विशेषक आर्गनाइजर 1956
8. पॉलिटिक्ल डायरी पृष्ठ संख्या 139-154
9. माधुरी दुबे, पंडित दीनदयाल उपाध्याय एकात्म मानव दर्शन का महत्व, पृष्ठ संख्या 74-76.
10. वर्मा, जवाहर लाल शिक्षा शोध महामना मदन मोहन मालवीय के शैक्षिक विचार बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झॉसी।
11. सरस्वती महार्षि, दयानन्द, सत्यार्थ प्राकाश,' आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट 455, खारी बावली, नई दिल्ली -6
12. त्रवेदी, विजय, हार नही मानूगां: एक अटल जीवन गाथा, हार्पर हिन्दी,2016
13. भिषीकर, सी, पी, केशवः संघ निर्माता, सुरूचि प्रकाशन, दिल्ली, 1980